THE TIMES OF INDIA

Date:17-05-23

Just Not Justice

Seizure or destruction of property without following due procedure is a troubling misuse of executive power

TOI Editorials

The Allahabad high court's Lucknow bench has directed the state government that it must return the seized property of a gangster. The seizure, sanctioned by Lucknow DM and upheld by a special judge, wasn't preceded by an inquiry whether the property had been acquired illegally, HC said. The judge, tellingly, observed the court is not a "post office or mouthpiece" of the state. This is another in a growing number of appeals filed by alleged or convicted criminals and peaceful protesters whose properties have been seized or bulldozed by state machinery without following due process.

There is a disturbing pattern to the state's swooping down to seize property, or raze it, seen as "summary punishment" even before investigators can decide whether seizure of property, or its destruction, is warranted or lawful. A particularly egregious example of this was the razing of the houses of three accused in a gangrape case in MP's Rewa – what did their homes have to do with the crime? And troublingly, when governments and police take this summary punishment route, many lower court judges sanction these actions. The reasoning is not dissimilar to cases of denial of bail, where trial courts' rejection of bail is seen as "quick punishment". Or indeed to encounter killings. Essentially, the executive arrogates to itself extra-judicial powers.

When the Bengal government earlier this year made its law on property seizure and fines more stringent to deter destruction of public property during protests, these columns noted that the law's effectiveness and fair application would boil down to the quality and fairness of policing. Cops are tasked with establishing "reasonable suspicion" to initiate proceedings. There's plenty of evidence from Bengal and other states to doubt whether investigation will be either high quality or fair. Politics will likely dictate who's penalised and who isn't.

Last year, a group of former judges of HCs and the SC called the apex court's attention to the sweeping seizures of property and use of bulldozers in a number of states, calling these "an unacceptable subversion of the rule of law". Civil society is rightly troubled by the "chilling effect" on largely peaceful protesters. But even when the state machinery uses such tactics on goons and mafia, they simply make victims of criminals – which is not governance, and most certainly not justice.

Date:17-05-23

पाकिस्तान की हालत सबके लिए नसीहत है

संपादकीय

भारत के साथ ही अंग्रेजी हुकूमत से मुक्ति पाकर अलग राष्ट्र बना पाकिस्तान। एक ही सांस्कृतिक भौगोलिक विरासत से निकले दोनों देशों ने लोकतंत्र को अंगीकार किया। लेकिन अपेक्षाकृत बेहतर कृषि भूमि व समृद्ध इलाके वाला पाकिस्तान लोकतंत्र के मूल्यों को कुछ साल भी नहीं झेल पाया ? सैनिक शासन आया, धर्म-शासित राज्य (थियोक्रेटिक स्टेट) बना, अनावश्यक युद्ध लड़ा, तत्कालीन फाटा क्षेत्र (अब खैबर पख्तूनख्वा) और बलूचिस्तान राज्य-शक्तियों को गंभीर चुनौती देते रहे। खुद के खड़े किए आतंकी गुट सिरदर्द बन गए। पाकिस्तान दुनिया के सबसे अशांत देशों में शुमार होने लगा । आखिर पूरी दुनिया में गवर्नेंस के अभी तक के ज्ञात सभी मॉडल्स में सर्वाधिक स्वीकार्य लोकतंत्र के समुन्नत मूल्यों का भार यह देश क्यों नहीं सह पाता? दरअसल धर्म के आधार पर बने इस मुल्क के लोग गवर्नेंस को धर्म से जुदा नहीं रख पाए । धार्मिक कट्टरपंथ ने सोच को किस कदर कुंठित किया, इसका नमूना है तहरीक-ए-तालिबान के फरमान कि लड़कियां आधुनिक तालीम लेने की जगह घरों में कैद रहकर सिर्फ कुरआन पढ़ेंगी और पुरुष डॉक्टर औरतों के शरीर को नहीं छुएंगे। हश्र यह हुआ कि अविकसित इलाकों की लड़कियां डॉक्टर नहीं बनीं, वहीं पुरुष डॉक्टर आतंकी गोली के डर से महिलाओं का इलाज नहीं कर सके। लेकिन पाकिस्तान की जनता ने आंदोलन भी किया तो लोकतंत्र की खाल ओढ़े बैठे इमरान खान के लिए, जो कभी खुद सेना और आतंकी संगठनों के इशारे पर सत्ता तक पहुंचे ? धर्म व्यक्ति को बेहतर बनाता है लेकिन धर्मान्धता समाज को पाशविक । पाकिस्तान की हालत दुनिया को एक नसीहत है।

Date:17-05-23

एक तरफ भुखमरी और दूसरी तरफ भोजन की बरबादी

नंदितेश निलय, (लेखक और विचारक)

भुखमरी की समस्या तब और विकराल रूप ले लेती है, जब विश्व की जनता जहां एक ओर अनाज की किल्लत से जूझ रही हो, वहीं दूसरी ओर खाना बरबाद करने का प्रतिशत भी बहुत बड़ा हो। आज भोजन की बरबादी भी दुनिया भर में भुखमरी के मूल कारणों में शामिल हो गई है। यूएनईपी की रिपोर्ट के मुताबिक पूरे विश्व में खाने की बरबादी के मामले में सबसे पहला स्थान चीन का है, जहां हर साल 9.6 करोड़ टन खाना बरबाद होता है। भारत में सालाना 6.87 करोड़ टन खाना बरबाद होता है। अमेरिका में 1.96 करोड़ टन! इसमें रसोईघर में खाना बरबाद होने का प्रतिशत भी बहुत ज्यादा है।

प्रसिद्ध इतालवी शेफ मास्सिमो बोटुरा ने 2015 में एक प्रदर्शनी लगाई थी, जिसका विषय था- फीड द प्लैनेट। उनकी सबसे बड़ी चिंता यह थी कि हम पृथ्वीवासियों को खिलाने के बारे में क्या सोच रहे हैं। उनके अनुसार पूरे विश्व में करीब 12 अरब लोगों के लिए भोजन का उत्पादन किया जाता है, जबकि आबादी करीब 8 अरब है। इसके बावजूद लगभग 86 करोड़ लोग भूखे रह जाते हैं और हम अपने उत्पादन का 33 प्रतिशत बरबाद भी कर देते हैं। चीन और भारत दुनिया भर में किसी भी अन्य देश की तुलना में बहुत बड़ी आबादी वाले देश हैं लेकिन यूएनईपी (संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम) की खाद्य अपव्यय सूचकांक रिपोर्ट की बात करें तो उसके अनुसार भारतीय घरों में सालाना 68,760,163 टन भोजन बरबाद होता है, या यूं कहें तो प्रति व्यक्ति लगभग 50 किलो। हमारे देश में जो 40% भोजन बरबाद हो जाता है, वो करीब-करीब सालाना 92,000 करोड़ रुपयों के बराबर है।

खाना बरबाद करने की समस्या सिर्फ स्ट्रक्चरल या फंक्शनल नहीं बल्कि आदतन भी है। क्रयशक्ति बढ़ने के साथ होटलों में खाना खाना या वीकेंड पर बाहर ही खाना नया स्टेटस सिम्बल बन गया है। खाना ऑर्डर करके कुछ खाना, कुछ छोड़ देना कोई मोरल या इमोशनल संकट नहीं बनता। जो दम्पती किचन में खुद नहीं जाते, उनमें अन्न के प्रति गहरी इज्जत और कृतज्ञता का भाव समाप्त होता जा रहा है।

और चूंकि तीन जनरेशन के सदस्य साथ खाना खाते नहीं तो कोई यह भी नहीं समझा पाता कि चावल का एक दाना भी थाली में नहीं छूटना चाहिए। बढ़ती सामाजिक असंवेदनशीलता अब भोजन की थाली तक आ चुकी है। खाना बनाना कभी काम नहीं था बल्कि परिवार को जोड़ने का सशक्त माध्यम था, लेकिन अब तो खासकर भारतीय मध्यवर्ग के लिए यह हीनता-ग्रंथि का हिस्सा बन चुका है। कोविड के समय जब खाना बनाने वाले शहर छोड़कर चले गए तो पहली बार मध्य वर्ग को किचन से जूझना पड़ा। किचन मानो उनके लिए वह जंजीर है, जिसमें सैलरीड दम्पती नहीं फंसना चाहते और न ही अपने बच्चों को इसके लिए प्रेरित करना चाहते हैं। किचन भले मॉडर्निटी में अनफिट हो चुका हो, घर खरीदते वक्त भारतीय मध्य वर्ग मॉड्यूलर किचन पर विशेष ध्यान देता है। तेजी से ऑनलाइन भोजन घरों में पहुंच रहा है।

भोजन की बरबादी का दुष्प्रभाव पर्यावरण पर भी पड़ता है। जब बेकार खाना लैंडफिल में जाकर सड़ता है, तो वह ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन करता है। डाटा देखें तो हमारे ग्रह पर भोजन की बरबादी के कारण हर साल करीब तीन अरब टन ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन होता है। जब हम भोजन का उत्पादन करने के लिए पानी, आग, बिजली आदि का उपयोग करते हैं तो यह भी जलवायु परिवर्तन का कारण बनता है।

भोजन की बरबादी को कम करने के लिए हमें कुछ छोटे कदम उठाने चाहिए, जैसे बचा हुआ खाना खाना या उतना ही खाना खरीदना, जितना हमें चाहिए। इससे वैश्विक भूख और जलवायु परिवर्तन से लड़ने में मदद भी मिलेगी। लोगों में पहले की तरह भोजन के प्रति भावनात्मक रिश्ता और उसके लिए एक जिम्मेदारी का भाव पैदा करना जरूरी है।

दैनिक जागरण

Date:17-05-23

दुविधा बढ़ाने वाला निर्णय

जगमोहन सिंह राजपूत, (लेखक शिक्षा, सामाजिक सद्भाव और पंथक समरसता के क्षेत्र में कार्यरत हैं)

महाराष्ट्र में उद्धव ठाकरे सरकार गिरने और शिंदे सरकार के गठित होने को लेकर राज्यपाल की भूमिका पर सर्वोच्च न्यायालय ने अपने हालिया निर्णय में जो कहा उसकी कानूनी स्थिति सभी पक्षों को स्वीकार करनी होगी। हालांकि, जो कानून के जानकार नहीं हैं उन्हें भी इसकी विवेचना और उसे व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने महाराष्ट्र के राज्यपाल रहे भगत सिंह कोश्यारी की इस मामले में भूमिका को आड़े हाथों लिया। कोश्यारी की यह आलोचना मेरी समझ से परे है। आखिर, जब राज्यपाल के पास सरकार के विरोध में इतनी बड़ी संख्या में विधायकों के हस्ताक्षरित पत्र प्रस्तुत किए गए तो इसका एकमात्र यही निष्कर्ष था कि सरकार अल्पमत में आ गई है। पूर्व के ऐसे अनेक उदाहरण राज्यपाल के संज्ञान में रहे होंगे, जिनमें सरकारों को बर्खास्त कर दिया गया था। फिर भी, महाराष्ट्र के राज्यपाल ने ऐसा नहीं किया। उन्होंने मुख्यमंत्री ठाकरे को विश्वासमत हासिल करने को कहा। यह अपने आप में एक तर्कसंगत निर्णय रहा। वहीं, मुख्यमंत्री ठाकरे ने सदन का सामना किए बिना ही त्यागपत्र दे दिया। इसका अर्थ था कि वह समझ चुके थे कि उनके नीचे से बहुमत की जमीन सरक गई है।

ऐसी स्थिति में कोश्यारी का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय के बहुचर्चित एसआर बोम्मई मामले के अनुरूप ही था। कर्नाटक की बोम्मई सरकार को 21 अप्रैल, 1989 को अनुच्छेद 356 के अंतर्गत बर्खास्त कर राज्यपाल की संस्तुति पर राष्ट्रपति शासन लगा दिया गया था। तब कुछ विधायकों नें विद्रोह किया था, लेकिन राज्यपाल ने मुख्यमंत्री को विधानसभा में बहुमत सिद्ध करने का अवसर नहीं दिया। इसके बाद सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय सुनाते हुए भविष्य के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश दिए कि ऐसे प्रकरणों में सही निर्णय तक कैसे पहुंचा जाए। उसमें स्पष्ट किया गया कि किसी भी राज्य सरकार के लिए बहुमत सिद्ध कराने का केवल एक ही स्थान है और वह है विधानसभा का मंच। उक्त निर्णय में ऐसी कोई तकनीकी जटिलता नहीं थी, जिन्हें सामान्य नागरिक न समझ सके। ऐसे में यह एक पहेली बनकर रह गई है कि जब राज्यपाल के रूप में कोश्यारी उन्हीं निर्देशों का पालन कर रहे थे तो उसके बावजूद सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें कैसे गलत ठहराया। ऐसे में अब जब भी महाराष्ट्र सरीखी स्थितियां उत्पन्न होंगी तो किसी राज्यपाल के समक्ष यह निर्णय करना अत्यंत कठिन होगा कि वह बोम्मई प्रकरण के दिशानिर्देश मानें या कोश्यारी के लिए दी गई शीर्ष अदालत की नसीहत का ध्यान रखें।

भारत में समय-समय पर ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती रहेंगी, क्योंकि केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपाल और केंद्र से इतर राजनीतिक दल वाली राज्य सरकार में राजनीतिक-वैचारिक एकरूपता संभव नहीं हो सकती। दिल्ली में उपराज्यपाल और राज्य सरकार के बीच निरंतर कायम विवाद इसका एक बड़ा उदाहरण हैं। ऐसे में पारस्परिक वैचारिक आदान-प्रदान समस्याओं का समाधान निकालने में सहायक हो सकता है। विमर्श लोकतंत्र में सबसे प्रभावी उपकरण है जो किसी भी समस्या का समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम है। जब ऐसा नहीं होता तो समस्याएं और टकराव बढ़ने लगते हैं। विमर्श का अभाव कई अप्रिय स्थितियों को जन्म देता है। उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़ जब बंगाल के राज्यपाल थे तो अक्सर यही देखने को मिलता था कि राज्य सरकार किसी न किसी प्रकार से उनके अपमान का प्रयास करती रहती थी। महत्वपूर्ण अवसरों पर उनके कार्यक्रम स्थल तक पहुंचने से पहले ही दरवाजे तक बंद कर दिए जाते। सरकारी अधिकारियों को उनके साथ कोई संपर्क न रखने को कहा गया। बंगाल के ही नहीं, बल्कि देश भर के भद्र लोग इस पर मौन रहे। फिर वहां नए राज्यपाल की नियुक्ति हुई। शुरुआती दौर में उनके तथा मुख्यमंत्री ममता बनर्जी के बीच सौहार्द की आशाजनक खबरें आईं। मुख्यमंत्री नें उन्हें बांग्ला भाषा की अक्षर-ज्ञान की पुस्तक भी भेंट की। बाद में मालूम पड़ा कि मुख्यमंत्री विश्वविद्यालयों से राज्यपाल का कुलाधिपति के रूप में कोई निर्देश या पत्राचार तक पसंद नहीं करती हैं। अब यह बंगाल के सभी सरकारी विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति यानी राज्यपाल के समक्ष स्पष्ट हो चुका है कि या तो विश्वविद्यालयों के मामलों से दूर रहें या फिर मुख्यमंत्री के शब्द-बाण झेलने के लिए तैयार रहें।

इसमें कोई संदेह नहीं कि राज्यपाल के रूप में यदि कोई कुलाधिपति विश्वविद्यालयों की साख को पुनः प्रतिष्ठित कराने में सफल हो जाए तो वह नई पीढ़ी के समक्ष नवाचार, कौशल प्रवीणता और ज्ञान सृजन की असीमित संभावनाए प्रस्तुत कर सकता है। नई पीढ़ी का आत्मविश्वास बढ़ा सकता है। 1978-80 के दौरान मध्य प्रदेश के राज्यपाल रहे सीएम पूनाचा ने इस असंभव को संभव कर दिखाया था। उनके प्रयासों से वहां परीक्षाएं समय से होने लगीं। परीक्षा परिणाम समय से आने लगे। विद्यार्थियों और प्राध्यापकों के बीच विश्वास का परिवेश निर्मित हुआ। इस सफलता का श्रेय उस समय के नेताओं और सरकार को भी दिया जाना चाहिए जिन्होंने राज्यपाल की नीयत पर विश्वास किया और उन्हें आगे बढ़ने में पूरी सहायता की। अब समय ने करवट बदली है। हाल के दौर में केरल, तमिलनाडु और बंगाल में कुलाधिपति के रूप में राज्यपालों के अधिकारों का अतिक्रमण किया गया। इन राज्यों के मुख्यमंत्रियों को राज्यपालों द्वारा कुलपतियों की नियुक्ति में संविधानसम्मत विधि से स्वविवेक का उपयोग पसंद नहीं आया। केरल में राज्यपाल को सूचित किए बिना ही राज्य सरकार ने कुलपतियों की नियुक्तियां कर दीं।

विमर्श मंचों पर विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता का गुणगान करने वाले नेतागण जब कुलपतियों की नियुक्ति का अधिकार अपने हाथ में लेने के लिए संवैधानिक प्रविधानों और सामान्य नैतिकता को भी भुला देते हैं तब ज्ञानार्जन के सुरम्य परिसरों पर संकट के बादल मंडराने लगते हैं। ये बादल तभी छंटेंगे जब विमर्श को विचारधारा के बंधनों से अलग किया जाए। इसके लिए प्राचीन काल से चली आ रही परंपरा के अनुसार आचार्य-अध्यक्ष यानी कुलाधिपति को सम्मान केवल सत्ता से ही नहीं, बल्कि न्यायिक व्यवस्था के शीर्ष स्तर से भी मिलना चाहिए।

जनसत्ता

Date:17-05-23

तकनीकी क्षेत्रों में बढ़ती महिला श्रमशक्ति

मोनिका शर्मा

बीते कुछ बरसों में तकनीक के विस्तार ने देश की आधी आबादी के कामकाजी संसार में तरक्की के नए मार्ग खोले हैं। तकनीकी क्षेत्रों में महिलाओं की बढ़ती संख्या इस बात की पुष्टि करती है। साथ ही बड़ी संख्या में युवतियों के अध्ययन के लिए तकनीक से जुड़े विषयों को चुनना भी यह बताता है कि भविष्य में महिलाएं इस क्षेत्र में बेहतर अवसर मिलने के प्रति आश्वस्त हैं। हालांकि जीवन के हर मोर्चे पर तकनीक के बढ़ते दखल के चलते दुनिया भर में स्त्रियां इस क्षेत्र का हिस्सा बन रही हैं, पर भारत के सामाजिक-पारिवारिक परिवेश में महिलाओं को मिल रहे नए विकल्प विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दरअसल, हमारे यहां कामकाजी महिलाओं के लिए पेशेवर जिम्मेदारियों के अलावा भी दायित्वों और आम जीवन से जुड़ी समस्याओं की एक लंबी सूची है। घर-परिवार की देखभाल और बच्चों की परवरिश के अलावा सामाजिक संबंधों के निर्वहन की जवाबदेही भी स्त्रियों के ही हिस्से आती है। ऐसे में तकनीकी क्षेत्र से जुड़ी नौकरियों में त्वरित संवाद, घर से काम करने की सुविधा और समय विशेष के मुताबिक अपना काम निपटाने की छूट मिलना बहुत मददगार बन रहा है। यही वजह है कि तकनीकी दुनिया में कामकाजी महिलाएं न केवल अहम भागीदारी निभा रही हैं, बल्कि सक्रिय रूप से नवाचार को भी प्रोत्साहन दे रही हैं। बीते कुछ बरसों में कई नवोदित स्टार्टअप भी महिलाओं ने शुरू किए हैं। 'नेशनल सेंटर फार वुमन ऐंड इनफार्मेशन टेक्नोलाजी' की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक तकनीक उद्योग के कार्यबल में महिलाओं की छब्बीस प्रतिशत हिस्सेदारी है। पिछले पांच वर्षों में तकनीक की दुनिया में महिलाओं की संख्या में पांच फीसद की बढ़ोतरी हुई है।

गौरतलब है कि कोरोना महामारी के दौर में मिली घर से काम करने की सुविधा से न केवल महिलाओं, बल्कि नियोक्ताओं को इसकी अहमियत समझ आई है। इस वैश्विक संकट के बाद घर से काम करने की संस्कृति को दुनिया के हर हिस्से में अपनाया गया। तकनीकी क्षेत्रों से जुड़ी भारतीय महिलाओं के लिए भी अब यह सुविधा बहुत कुछ आसान बना रही है। गौरतलब है कि हमारे यहां मातृत्व की जिम्मेदारी, तबादला या कामकाजी सम्मेलनों का हिस्सा बनने के लिए आए दिन दूसरे शहर जाने जैसी बातें महिलाओं के श्रमबल से बाहर होने की अहम वजहें रहीं हैं। ऐसे में तकनीक ने इस भागमभाग को बहुत हद तक कम किया है।

मौजूदा वक्त में कामकाजी महिलाएं तकनीकी दुनिया में कार्यबल का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी हैं। कभी पूरी तरह पुरुष प्रधान रहे तकनीक के क्षेत्र में स्त्रियों की बढ़ती भागीदारी कई मायनों में अहम है। हाल में जारी ग्रांट थार्नटन रिपोर्ट के मुताबिक हमारे यहां पांच प्रतिशत महिलाओं ने हमेशा के लिए 'वर्क फ्राम होम' चुना है। करीब पांच प्रतिशत महिलाएं 'फ्लेक्सिबल वर्क' यानी अपने समय और सुविधा के मुताबिक काम कर रही हैं। अपनी मर्जी से दफ्तर या घर से काम करने के विकल्प का चुनाव उनके लिए बहुत कुछ आसान बना रहा है। देखने में आ रहा है कि घर से काम करने की सुविधा से दूसरी और तीसरी श्रेणी के शहरों में रहने वाली महिलाओं की महानगरों में मौजूद बड़ी कंपनियों में भी हिस्सेदारी बढ़ी है। इसके चलते दूर-दराज के क्षेत्रों में कामकाजी महिलाओं की संख्या बढ़ रही है। घर-परिवार की जिम्मेदारियों के साथ संतुलन साधते हुए आगे बढ़ने की ऐसी परिस्थितियां आने वाली पीढ़ियों के लिए भी नई राह खोलने वाली हैं।

दरअसल, हमारे सामाजिक-पारिवारिक ढांचे में महिलाओं को दायित्वों का तानाबाना आज भी मजबूती से बांधे हुए है। इन जिम्मेदारियों में संतुलन बनाए रखने से जुड़ी कई उलझनें कामकाजी दुनिया में उनकी रफ्तार कम करती हैं। हालांकि अब घरेलू आय में उनके योगदान की अहमियत भी समझी जाने लगी है, पर मानसिकता से जुड़ी मुश्किलें बदस्तूर कायम हैं। ऐसे में तकनीकी दुनिया ने उनके जीवन को सहज बनाया है। नतीजतन, तकनीकी शिक्षा और कामकाजी दुनिया में महिलाओं और बेटियों की संख्या बढ़ रही है। 'नेशनल स्टैटिस्टिकल आफिस' के आवधिक श्रमबल सर्वेक्षण के अनुसार, भारत में 2017-18 में 17.5 प्रतिशत रही महिला श्रमबल की भागीदारी में 2020-21 तक पच्चीस प्रतिशत बढ़ोतरी हुई है। हालांकि सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हर क्षेत्र में महिलाओं की मौजूदगी बढ़ी है, पर कृत्रिम मेधा जैसे बिल्कुल नए क्षेत्र में भी बाईस फीसद विशेषज्ञ महिलाएं हैं। अधिकतर अध्ययन बताते हैं कि आने वाले समय में यह भागीदारी और बढ़ेगी।

नवाचार और तकनीक की दुनिया के हर क्षेत्र में स्त्रियां उल्लेखनीय भूमिका में होंगी। पिछले वर्ष 'आई डिलाइट' कंपनी की एक रिपोर्ट में 2022 के अंत तक दुनिया भर की तकनीक कंपनियों में महिलाओं की भागीदारी 33 फीसद तक होने की उम्मीद जताई गई थी। इस हिस्सेदारी में 2023 में आठ प्रतिशत का इजाफा संभव है। 2022 की 'हुरून इंडिया' की रिपोर्ट के मुताबिक निजी क्षेत्र की नामी-गिरामी पांच सौ तकनीकी कंपनियों में 11.6 लाख महिलाएं कार्यरत हैं। साथ ही हमारे यहां 'स्टेम' शिक्षा में भी लड़कियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। 'स्टेम' का अर्थ साइंस, टेक्नोलाजी, इंजीनियरिंग और मैथ्स विषयों से है। आंकड़ों के अनुसार 1980 में देश में इंजीनियरिंग की सभी डिग्रियों में महिलाओं की हिस्सेदारी दो प्रतिशत से भी कम थी। चार साल पहले 'आल इंडिया सर्वे आफ हायर एजुकेशन' की रिपोर्ट में सामने आया था कि इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी क्षेत्र की 31 प्रतिशत डिग्रियां महिलाओं द्वारा ली गई थीं।

निस्संदेह ऐसे आंकड़े बदलती सोच और बढ़ती महिला भागीदारी की बानगी हैं। कुछ समय पहले संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंतोनियो गुतारेस ने भी कहा था कि 'विज्ञान में ज्यादा संख्या में लड़कियां और महिलाएं, बेहतर विज्ञान के समान हैं। महिलाएं और लड़कियां शोध में विविधता साथ लेकर आती हैं, विज्ञान विशेषज्ञों के समुदाय का विस्तार करती हैं। साथ ही विज्ञान एवं तकनीक में हर किसी के लिए नया परिवेश भी बनाती हैं, जिससे हर किसी को लाभ होता है।' यकीनन, महिलाओं की वैज्ञानिक सोच, तकनीकी समझ, समाज और परिवार से जुड़े हर पहलू पर सकारात्मक असर डालती है। अपनी देहरी तक सिमटी जिंदगी में भी वे संसार भर से जुड़ पाती हैं। हमारे देश के परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह और अहम हो जाता है।

दरअसल, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना महिलाओं की बहुत-सी परेशानियों का हल है। उनके आत्मविश्वास का आधार है। सुरक्षित जीवन जीने और अपने आत्मसम्मान से समझौता न करने के लिए यह सबसे जरूरी है। ऐसे में तकनीकी क्षेत्रों में महिला श्रमशक्ति की बढ़ती भागीदारी ने उनके जीवन के इस सबसे अहम पक्ष को संबल दिया है। समझना मुश्किल नहीं कि महिलाओं का आर्थिक रूप से सशक्त होना समग्र समाज को सशक्त बनाता है। भावी पीढ़ियों के लिए बदलाव का आधार बनाता है। स्त्रियों की निर्णयकारी क्षमता को बल देता है। नेतृत्वकारी भूमिका में आने का मार्ग सुझाता है। अपेक्षाओं और उपेक्षाओं के परिवेश वाले पारिवारिक ढांचे में उनके अस्तित्व को पुख्ता पहचान दिलाता है। ऐसे में तकनीकी संसार में बढ़ते महिला श्रमबल ने स्त्रियों के लिए नए मार्ग खोले हैं। सुखद यह भी है कि पारंपरिक रंग-ढंग वाले भारतीय समाज में इस नए बदलाव को आत्मसात करते हुए स्त्रियां आगे भी बढ़ रही हैं। समय के साथ बदलती दुनिया में तकनीक से जुड़े बदलावों को सीखने, समझने और स्वीकार करने की इस सहज सोच ने महिलाओं का जीवन बदल दिया है। यही वजह है कि आधी आबादी ने तकनीक की दुनिया में भी तरक्की का आसमान छुआ है। डिजिटल दुनिया में उनकी यह दस्तक भविष्य का खाका सामने रखती है।